नमः श्री सीमंधरदेवाय।

नमः श्री सद्‌गुरुदेवाय।

नमः भगवती मातरम्।

आध्यात्मिक प्रयोग एवं विधि

लेखिका, संकलनकर्ता एवं सौजन्यदाता

वढवाणनिवासी (अभी सोनगढ)

श्री रमणीकलाल लालचंद दोशी परिवार

हस्ते स्मिताबेन नरेन्द्रभाई बावीशी

आध्यात्मिक प्रयोग एवं विधि

हिन्दी अनुवादकर्ता

मीनाबेन देसाई

अहमदाबाद

मूल्य स्वाध्याय

लेखिका, संकलनकर्ता एवं सौजन्यदाता

वढवाणनिवासी (अभी घाटकोपर/सोनगढ)

श्री रमणिकलाल लालचंद दोशी परिवार

हस्ते स्मिताबेन नरेन्द्रभाई बावीशी

प्रकाशकीय निवेदन

प्रशममूर्ति पूज्य धन्यावतार, सम्यक्‌दृष्टि पूज्य बहिनश्री चंपाबहिनके वढवाणमें आये जन्मधामके नवीनीकरणका लाभ हमारे परिवारको मिला उसके हर्षोल्लासमें (आध्यात्मिक प्रयोग अने विधि) गुजरातीमें प्रकाशित किया गया था ।

"पूज्य गुरुदेवश्री तो भाविके तीर्थंकर है और स्वयं उसके गणधर है" ऐसा जातिस्मरणमें देखनेवाले पूज्य बहिनश्रीकी १०२वीं जन्मजयंती घाटकोपर मुमुक्षु मंडल द्वारा सोनगढमें मनाई गई थी। इस प्रसंग पूज्य गुरुदेवश्री एवं पूज्य बहिनश्रीके बतलाये आत्मसाक्षात्कार करनेके सचोट सिद्धांतोंको प्रयोगात्मक एवं विधिपूर्वक इस पुस्तकमें प्रस्तुत किये। इस सिद्धांतोंको पूज्य बहिनश्रीने छोटी वय (मात्र १९ वर्ष)में प्रयोग करके सम्यग्दर्शन प्राप्त किया था।

इस पुस्तकमें दो विभाग है । एक है आध्यात्मिक प्रयोग। वे प्रयोगका अवश्य चिंतवन करने योग्य है और दूसरा है "जाननेवाला जाननेमें आ रहा है" उसमें पूज्य बहिनश्रीकी १०२वीं जन्मजयंतीके उपलक्ष्यमें १०२ अमृत वचन लिये है।

इसके पूर्व **संवादमाला भाग-१-२-३-४-५-६-७(गुजरातीमें)** नाटिका एवं संवादके रूपमें सनातन दिगम्बर जैनधर्म के सिद्धांत प्रकाशित हो चुके। प्रत्येक भागकी कई प्रतियाँ प्रभावनाके रूपमें मुमुक्षुओंको दी गई। जिसका अद्‌भुत प्रतिसाद मिला। हिन्दीभाषी मुमुक्षुओंका विशेष आग्रह होनेसे **संवादमाला भाग-१-२-३-४-५-६-७ हिन्दीमें PDF** में प्रकाशित हो चुके है । अभी **आध्यात्मिक प्रयोग एवं विधि हिन्दीमें PDF** के रूपमें प्रस्तुत करते हुए हमें प्रसन्नता हो रही है ।

इस 'आध्यात्मिक प्रयोग एवं विधि' का हिन्दी अनुवाद मीनाबहिन देसाई, अमदावादने निस्पृहभावसे, जिनवाणी प्रति सेवाभावसे कर दिया है, तदर्थ हम उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हैं। इस प्रसंग पर पूज्य मातुश्री इन्दुमतीबेन रमणिकलाल दोशीको स्मरणपट पर अंकित करते हैं।

यह पुस्तिका निश्चयसे तो पुद्गलके परमाणुसे बनी हुई है। हम उसके कर्ता नहीं है। इसमें दिगम्बर सिद्धान्त होनेसे आशातना न हो उसका ध्यान रखना। ये संवाद पाठशाला एवं उत्सवों में भी प्रस्तुत कर सकते हैं। लेकिन इतना ध्यान रहे कि ये मात्र मनोरंजनका हेतु न बने। बच्चे एवं नये मुमुक्षुओंको भी ये सिद्धांत आत्मसात् हो ऐसी भावना।

दि. १०-१२-२०२०

स्मिताबेन नरेन्द्रभाई बावीसी

सोनगढ

स्मरणांजलि

जन्म
२-१०-१९५६

देह परिवर्तन
१०-१२-२०२०

स्व. मीनाबेन भरतभाई देसाई (उम्र-६५)

मृत्यु पश्चात स्मरण रहे उसका नाम जीवन । "मानवदेह नश्वर है, संयोग है उसका वियोग अवश्य है" यह सत्य अनुसार आप सदेह हमारे बीच नहीं है। किन्तु आपके सद्भाव, सद्गुण और संस्कार स्वरूप आप हमारे बीच विद्यमान हो। भौतिकता और दिव्यता के बीच आपने दिव्यताको सर्वोपरी सार्थक किया। आपके जीवनकी प्रेरणा हमारा पथ सदैव प्रकाशित कर रही है।

आपने हमारे प्रकाशन संवादमाला भाग १ से ७, हितपद संग्रहका हिन्दी अनुवाद एवं स्वात्मानुभव मननका गुजराती भावानुवाद (अनुभवरत्न चिंतामणि भाग-१) और अनुभवरत्न चिंतामणि भाग-२, ३, ४ निस्वार्थ और निःकांक्षभावसे जिनवाणीकी सेवा समर्पितभावसे कर दिया है। तदर्थ हम आपके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हैं।

आप मिलनसार, निराभिमानी और देव-गुरु-शास्त्र प्रति समर्पित थे। जीवनकी अंतिम क्षणके एक हप्ते पूर्व आपने 'आध्यात्मिक प्रयोग एवं विधि' पुस्तकका हिन्दी अनुवाद कर दिया था। आपने ऐसे असाध्य रोगमें भी आकुलता बिना, जागृत अवस्थामें प्राप्त किये आत्मसंस्कारके बलसे देव-गुरु-शास्त्रका स्मरण एवं चिंतवन करते शांत परिणामपूर्वक देह परिवर्तन किया है। आपके उपकारोंका स्मरण करते हुए हम यह 'आध्यात्मिक प्रयोग एवं विधि' पुस्तकरूप श्रद्धासुमन आपको समर्पित करते है।

आपने प्राप्त किये आत्मसंस्कारके बलसे आप शीघ्र वीतराग देव-गुरुका सानिध्य प्राप्त कर अविनाशी शाश्वत सुखको प्राप्त हो ऐसी हमारी आपके प्रति भावांजलि है।

–स्मिताबहिन
बावीशी,
सोनगढ

ॐ शांति... शांति...शांति...

पूज्य बहिनश्री प्रति भक्ति

धन्य अवतार मेरे चंपामातका (२)
धन्य जातिस्मरण मेरे चंपामातका (२)
धन्य सम्यग्दर्शन मेरे चंपामातका (२)
आनंद मनाएँ भक्त आनंद मनाएँ (२)

धन्य पूर्वजन्म विदेहमें (२)
धन्य दर्शन सीमंधरनाथके (२)
धन्य संदेश लाए दिव्यध्वनिके (२)
आनंद मनाएँ भक्त आनंद मनाएँ (२)

धन्य वर्धमानपुरीमें जन्म (२)
धन्य जेठाभाई कुल हुआ (२)
धन्य तेजबा माताकी गोद (२)
आनंद मनाएँ भक्त आनंद मनाएँ (२)

धन्य १०२वाँ जन्मदिन (२)
धन्य वढ़वाण जन्मधाम (२)
धन्य बहिनश्रीका जीवनचरित्र (२)
आनंद मनाएँ भक्त आनंद मनाएँ (२)

धन्य भावि सूर्यकीर्ति तीर्थंकरको (२)
धन्य भावि देवेन्द्रकीर्ति गणधरको (२)
धन्य निकट मोक्षगामी जीव (२)
आनंद मनाएँ भक्त आनंद मनाएँ (२)

(दोहे)

ए....चंपाकुंवरी पधारे वढ़वाणमें और वढ़वाण बना वर्धमानपुरी,
ए...१०२वाँ जन्मदिन मनाते, हृदय उल्लसे हमारे (२)
ए...जन्मधामका नवीनीकरण करके, हृदय उल्लसे हमारे (२)

विभाग-१

आध्यात्मिक प्रयोग

प्रयोग-१ : क्या हम सदा शुद्ध ही है?

प्रमाण :(१) सुवर्ण खदानमें कंदर्प (कीचड़) के साथ हो फिर भी सदा कैसा होता है? शुद्ध ही होता है।

(२) कमल पानीमें रहता है तदपि सदा कैसा होता है? पानीसे अलिप्त ही रहता है।

(३) मछली सदा पानीमें रहती है तदपि कभी जड़ होती है? कदापि नहीं।

निर्णय : तो फिर हम सदा राग-द्वेषके समय भी शुद्ध क्यों नहीं हो सकते? शुद्ध ही है। ऐसे शुद्ध स्वरूपका सदा अनुभव किजीये।

प्रयोग-२ : स्वयं ही स्वयंका गुरु है।

प्रमाण :(१) गुरु बहुतसे शिष्योंको साथमें समझानेका राग करे तदपि क्या सभी शिष्योंका क्षयोपशम समान होता है? नहीं।

(२) क्या सभीकी रुचि समान होती है? नहीं।

(३) क्या गुरु समझाते है तब सभीका उपयोग समान होता है? नहीं।

निर्णय : इसलिये स्वयं जितना समझे उतना स्वयंका गुरु हो सकता है।

प्रयोग-३ : क्या हम सिद्ध समान है?

प्रमाण :(१) सिद्ध भगवानमें अनंत गुण है, तो हमारेमें अनंत गुण है या नहीं?

(२) सिद्ध भगवानको पूर्ण ज्ञान पर्यायमें खिला है, वह कहाँसे आया? द्रव्यमें था तभी पर्यायमें आया न? तो हमारी सत्तामें भी पूर्ण ज्ञान विद्यमान है न?

(३) सिद्ध भगवानको पूर्ण आनंद पर्यायमें खिला वह कहाँसे आया? द्रव्यमें सत्तामें था वहाँसे आया न! बस! तो हमारी सत्तामें भी पूर्ण आनंद विद्यमान है।

(४) जिस प्रकार सिद्ध भगवानमें पूर्ण वीर्य, पूर्ण दर्शन, पूर्ण चारित्र आदि गुण द्रव्यमें थे, तो पर्यायमें प्रकट हुए न? तो हमारी सत्तामें भी ये सभी गुण है न?

(५) सिद्ध भगवान भी छह द्रव्यमेंसे एक द्रव्य जीव द्रव्य है और हम भी जीव है। इसलिये निगोदसे लेकर सिद्ध तकके सभी जीवमें एक समान अनंत गुण हैं।

निर्णय : तो साबित हुआ कि हम सिद्ध समान ही है। 'सिद्ध समान सदा पद मेरो' ऐसा अनुभव करो।

प्रयोग-४ : रागद्वेषकी पर्याय एक समयकी है?

प्रमाण : (१) आप क्रोध करते हो तो कितनी देर टिकता है? एक समय।

(२) आप शुभभाव करते हो तो वह कितनी देर टिकता है? एक समय।

(३) क्या आप रात-दिन दानका भाव एकसमान कर सकते हो? नहीं।

निर्णय : यह ही प्रमाणित करता है कि राग-द्वेषकी पर्याय एक समयकी है। इसलिये मैं हमेशा वीतराग स्वभावी ही हूँ ऐसा अनुभव किजीये।

प्रयोग-५ : क्या मैं ज्ञानमय हूँ ?

प्रमाण : (१) यदि मेरेमें ज्ञान नहीं होता तो मैं जानता कैसे?

(२) यह आँख, कान, नाक आदि पंचेन्द्रिय तो शरीरके भाग है। शरीर तो मेरेसे सदा पृथक् ही है। सिद्ध भगवानको तो शरीर ही नहीं है तो सिद्ध भगवान किसके द्वारा जानते है? ज्ञान द्वारा ही जानते है।

निर्णय : इसलिये मैं हमेशा अतीन्द्रिय ज्ञानमय ही हूँ। ऐसा अनुभव किजीये।

प्रयोग-६ : मैं निर्विकल्प ही हूँ।

प्रमाण : (१) विकल्प चाहे शुभ हो या अशुभ, वे तो एक समयकी पर्यायमें है, वे आकर चले जाते हैं।

(२) यदि मेरे स्वभावमें होते तो कभी न चले जाते।

(३) जैसे मिसरीका स्वाद मीठा है वह उसमेंसे कभी नहीं जाता, निम्बुका स्वभाव खट्टा है वह कभी नहीं जाता वैसे आत्माका निर्विकल्प स्वभाव कभी नहीं जाता। विकल्प आकर चले जाते है और मैं सदा, सर्वदा शाश्वत निर्विकल्प ही हूँ। विकल्प मुझे स्पर्श तक नहीं करते।

निर्णय : इससे यह साबित हुआ कि मैं सदा निर्विकल्प ही हूँ।

प्रयोग-७ : राग जीवके परिणाम नहीं है।

प्रमाण : (१) राग आत्माके स्थायी, अनन्य, स्वाभाविक परिणाम नहीं है।

(२) राग जीवको प्रसिद्ध करता नहीं है।

(३) राग जीवके आश्रयसे उत्पन्न नहीं होता है।

(४) राग ज्ञानकी तरह स्थायी नहीं रहता है। पर्यायमें एक क्षणके लिये कर्मके उदयके आश्रयसे रहता है।

निर्णय : राग जीवके परिणाम नहीं है। इसलिये राग मेरा नहीं ऐसा श्रद्धान करके ज्ञानमें ही आनंदमें रहो।

प्रयोग-८ : संयोग है तो वियोग होगा ही।

प्रमाण : (१) संयोग अर्थात् नोकर्म। कर्मके उदयके निमित्त जीवके समीप जो जीव या पुद्गल आये उसे संयोग कहते है। जैसे कि स्त्री, पुत्र, पौत्र, सेवक, गृह, वाहन इत्यादि।

(२) हम जो भावकर्म (विकल्प) करते है, उसके निमित्त द्रव्यकर्मका बंध हुआ उसके फल स्वरूप संयोग आते है। और यह विकल्प अधिक समय टिकते नहीं है। तो उसका फल भी कहाँसे अधिक समय होगा? इसलिये संयोगका वियोग निश्चित है।

(३) संयोग वह स्वभाव नहीं इसलिये स्थायी नहीं रहते।

निर्णय : इसलिये संयोगका वियोग निश्चित ही है। संयोग वियोग लेकर ही आता है। बालक जन्म लेता है तब मृत्युका समय निश्चित करके ही आता है। (जितना समय व्यतीत होता है उतना मृत्युके समीप जाता है) इसलिये संयोग पर ममत्व नहीं करना और वियोगका शोक नहीं करना।

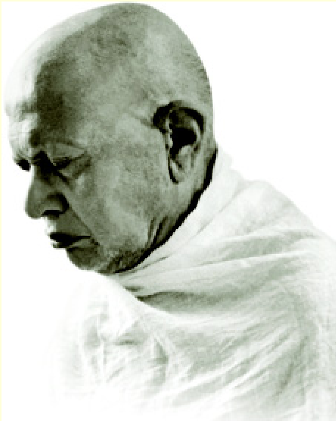

प्रयोग-१ : क्या मैं शरीरसे पृथक् हूँ?

प्रमाण : (१) मैं सिद्ध समान हूँ, सिद्ध भगवानको तो शरीर ही नहीं है।

(२) शरीर तो नामकर्मके उदयके निमित्तसे जीवके साथ एकक्षेत्रावगाह अल्प समयके लिये आता है। शरीर तो पुद्गल नोकर्म है, वह कोई जीवका स्वभाव नहीं। वह तो पृथक् द्रव्य है।

(३) इसलिये मृत्युके समय जीव और शरीर पृथक् हो जाते है। मृत्यु होते शरीर पड़ा रहता है। आंख, कान, नाक, चमड़ी आदि सभी इन्द्रियाँ होने पर भी 'जाननपना' नहीं है।

निर्णय : इससे तय होता है कि मैं शरीरसे पृथक् हूँ। इसलिये शरीरका ममत्व न करुँ।

प्रयोग-१० : क्या शुद्ध आत्मा जाननेमें आये ऐसा है?

प्रमाण : (१) आत्मा शरीरसे पृथक्, संयोगसे पृथक् ज्ञानमय है।

(२) हमेशा, सदा, सर्वदा, सहज, डग डग पर, खाते, पीते, ऊठ्ते, बैठ्ते, सोते समय राग-द्वेष अर्थात् शुभ-अशुभभावके समय भी आत्मा ज्ञानमय ही रहता है।

(३) आत्माको भेदसे ज्ञान-दर्शन-चारित्र आदि लक्षणसे पहचाना जा सकता है।

(४) इस भेदको भी छोड़कर अभेद सत् सनातन 'मैं हूँ वही हूँ' 'मैं हूँ वही मैं हूँ' ऐसे गहराईसे पूर्ण महिमापूर्वक, पूर्ण अर्पणता सह ध्यानसे जान सकते है। जिस प्रकार नदी पहाड़मेंसे निकलकर नीचे आती है तब नदीमेंसे पानी लेंगे तो थोड़ा मिलेगा लेकिन उसके उत्पत्तिस्थान पहुँचेंगे तो संपूर्ण शुद्ध पानी मिलेगा उसी प्रकार आत्माकी सत्ताकी श्रद्धा करते पूर्ण ज्ञान, पूर्ण वीर्य आदि गुण पर्यायमें प्रकट होते आत्मा शुद्धरूप जाननेमें ही आयेगा। (दृष्टिगोचर होगा।)

निर्णय : यह बतलाता है कि शुद्ध आत्मा जाननेमें आ सके ऐसा है।

प्रयोग-११ : धर्म स्वयंसे होता है, निमित्तसे नहीं।

प्रमाण : (१) निमित्त अर्थात् स्वके अतिरिक्त अन्य द्रव्य. जीव या अजीव। जो कार्यके समय उपस्थित रहता है।

(२) कार्य अर्थात् पर्याय। पर्याय स्वद्रव्यमेंसे आती है या अन्य द्रव्यमेंसे? स्वयंमेंसे ही। तो फिर निमित्तने क्या किया?

(३) पर्याय क्रमबद्ध है या आगे-पीछे? क्रमबद्ध है तो निमित्त क्या आगे-पीछे कर सकता है? नहीं। तो निमित्तने क्या किया? कुछ नहीं।

निर्णय : इसलिये कार्य तो स्वयंसे ही होता है। निमित्तसे नहीं। निमित्तकी तो मात्र उपस्थिति होती है। इसलिये कोई भी कार्यके समय निमित्तको मान देना या दोष देना छोड़ देना चाहिये। मात्र ज्ञाता ही रहे।

प्रयोग-१२ : कर्म जीवमें कुछ करता नहीं।

प्रमाण : (१) कर्म अर्थात् जड़-पुद्गल कार्माण वर्गणाके परमाणुओंके स्कंध।

(२) कर्म पृथक् द्रव्य और जीव पृथक् द्रव्य।

(३) कर्म स्वयंका परिणमनका कार्य करता है और जीव स्वयंका परिणमनका कार्य करता है।

(४) कर्मकी और जीवकी पर्याय क्रमबद्ध है तो जीवकी पर्यायको कर्म आगे-पीछे कैसे कर सकता है? जीवकी पर्यायको अक्रम कैसे कर सकता है?

निर्णय : इसलिये कर्म जीवके साथ एकक्षेत्रावगाह होने पर भी जीवका कोई कार्य सुधार या बिगाड़ नहीं सकता। इसलिये ही कर्मके उदय समय कर्मके सामने देख औदायिकभाव करनेका छोड़कर मात्र स्वके ज्ञाता रहे तो कर्मकी निर्जरा हो जायेगी।

प्रयोग-१३ : क्षुधा (भूख) कर्मके उदय समय उदासीनभाव रह सके।

प्रमाण : जब जीवका लक्ष्य स्वज्ञायककी ओर अंतर्मुख न हो तब परलक्षमें जाता है। क्षुधा कर्मका उदय आये तब यदि स्वमें ही लक्ष होता है अर्थात् सदा ज्ञायकको ही उर्ध्वमें रखा हो, ज्ञायकमें ही लीन हो तो क्षुधाकर्मका उदयकी ओर लक्ष ही नहीं रहता और कर्म फल दिये बिना ही खिर जाते है। लेकिन यदि ज्ञायककी ओर लक्ष न हो तो क्षुधाका लक्ष्यपूर्वक ज्ञान होता है। लेकिन उसी समय पुरुषार्थका जोर बढ़ा देना। क्षुधाका ज्ञान करनेवाला कौन? वह मैं ही। क्षुधा कर्म वह मैं नहीं। और शरीरकी पलटती पर्याय भी मैं नहीं। इस प्रकार हमेशा पुरुषार्थका अंदर जोर करके भेदज्ञान करते लक्ष्य ज्ञायककी ओर चला जाता है। पश्चात् खुराकके पुद्गलकण एकक्षेत्रावगाह आनेका काल हो तो आये लेकिन आत्माकी ओर रुचि नहीं है। क्षुधासे मेरे आत्माको कोई लाभ या नुकशान नहीं और खुराकका स्वादिष्ट कणोंमें कुछ गृद्धि नहीं और बेस्वाद कणोंके प्रति ग्लानि नहीं है। अरुचिभाव है इसलिये उदासीनभावसे रह सकता है।

निर्णय : इस प्रकार ज्ञायककी ओरका लक्ष्य करते कोई भी कर्मके उदय समय (क्षुधा, तृषा, गर्मी, ठंडी, वर्षा, उपसर्ग आदि) उदासीन रह सकते हैं।

भाग-२

जाननहार जाननेमें आ रहा है

शब्दार्थ :(१) जाननहारा—स्व ज्ञायक।

(२) जानना—अर्थात् लक्ष्य, ध्येयपूर्वक, रुचिपूर्वक तन्मयतापूर्वक जानना।

(३) पर—निर्मल पर्याय, विकारी पर्याय, द्रव्यकर्म, नोकर्म आदि।

१

प्रश्न : स्वयंका अस्तित्वका निर्णय किस प्रकार करना?

उत्तर : मैं यह रहा। हमेशा, सर्वदा, पृथक् जाननहार। (पूज्य बहिनश्री)

२

सभी तालेकी चाबी एक 'ज्ञायकका अभ्यास' (अर्थात् कि जाननहार ही जाननेमें आ रहा है।) (पूज्य बहिनश्री)

३

प्रश्न : ज्ञान परको क्यों जानता नहीं है?

उत्तर : ज्ञान ज्ञानको ही जानता है। ज्ञान बाहर जाता ही नहीं। तो बाह्यका किसे जाने? (पूज्य बहिनश्री)

४

जाननहार ही जाननेमें आ रहा है। हमेशा, सर्वदा, सहज, सर्वक्षेत्र, मुझे, आपको, सभीको स्वज्ञायक (जाननहार) ही जाननेमें आ रहा है। (समयसार गाथा १७-१८)

५

'होने योग्य होता है' तभी 'जाननहार ही जाननेमें आ रहा है' 'होने योग्य होता है' वह परिणाम जाननेमें आ रहा है ऐसा नहीं है। यह मंत्र है।

६

आत्मा स्वपरप्रकाशक शक्तिमय है। इसलिये स्वसंवेदनज्ञानकी पर्यायमें और केवलज्ञानकी पर्यायमें स्वको जानते पर जाननेमें आ जाता है। लेकिन मुझे तो 'जाननहार ही जाननेमें आ रहा है' यह लक्ष, यही रुचि करते शुद्ध परिणति श्रद्धा, ज्ञान और चारित्रकी होती है और वह ही ज्ञानोपयोगको स्वमें खिंचता है।

७

आचार्यदेव कहते है कि मेरी कोई अन्य बात तू मान या न मान, लेकिन एक बात तो मान कि, 'मैं परको जानता ही नहीं' (परका लक्ष, ध्येय, ध्यान ही नही हैं) ऐसा निर्दयरूपसे निषेध करेगा तो तुझे अवश्य जाननहार जाननेमें आ जायेगा।

८

'जाननहार ही जाननेमें आ रहा है' यह जिनसूत्र है, दिव्यध्वनिका सार है। यह ही मंगल, उत्तम और शरण है, यह ही इन्द्रियोंको जीतनेकी कला है, अध्यात्मका सार है, आगमोंका सार है, उत्कृष्ट, सरलमें सरल मोक्षमें जानेका रोकेट है। महामंत्र है, अखंड मंत्र है, रक्षा मंत्र है, अखंड धून है, सुखी होनेका यह एक ही उपाय है, स्वयंके मिथ्यात्वके नाशका रामबाण उपाय है। पूज्यश्री कुंदकुंदाचार्यदेव, पूज्यश्री अमृतचंद्र आचार्यदेव, पूज्यश्री कानजीस्वामी और पूज्य भगवती माताने यह ही बात कही है। यह ही समयका सार है। कर्तापना छोड़नेका यह एक ही उपाय है। इस अभिप्रायसे ही अतीन्द्रिय ज्ञानकी ओर दशा झुकती है। तू आज मान, कल मान, चाहे अनंतकाल पश्चात मान, लेकिन तुझे मानना तो पडेगा कि 'मैं ही ज्ञायक, मैं ही जाननहार, मुझे पर जाननेमें आता ही नहीं है' (परके उपर लक्ष्य नहीं) तभी मोक्ष होगा। तेरी निधि तुझे मिल जायेगी।

९

द्रव्यके साथ स्वस्वामी सम्बन्ध है।

पर्यायके साथ स्वस्वामी सम्बन्ध नहीं है। (दृष्टि अपेक्षा)

१०

विकल्पके समय जाननहार ही जाननेमें आ रहा है। ऐसा सतत् चौबीस घंटा चिंतवन करना।

११

‘जाननहार ही जाननेमें आ रहा है’ ऐसा आत्मश्रद्धान अर्थात् ही सम्यक्दर्शन। ऐसा ज्ञान अर्थात् सम्यक्ज्ञान। ऐसी आत्मलीनता अर्थात् ही सम्यक्चारित्र।

१२

पूज्य श्री सीमंधरनाथके श्रीमुखसे नीकली हुई बात है कि ‘परिणाम जैसे होनेवाले है ऐसे ही होंगे’। कोई भी परिणामके समय ज्ञानकी पर्याय ज्ञाताको ही तन्मय होकर जानती है। उत्पन्न होते–विलय होते परिणाम एक समयके है। उसमें तन्मय नहीं होते। इसलिये पर्याय ‘पर’ है ऐसा कहा जाता है।

१३

‘परको जानता हूँ’ (लक्ष्यपूर्वक) यह अभिप्राय उन दोषोंकी उत्पत्तिकी खदान है। ‘जाननहार ही जाननेमें आ रहा है’ यह अभिप्राय उन दोषोंके नाशकी खदान है।

१४

प्रवचन सुनते समय ऐसा अभिप्राय होता है कि ‘मैं प्रवचन सुनता हूँ, सुन सकता हूँ’ यह मिथ्या अभिप्राय है। लेकिन प्रवचन सुनते समय भी ‘जाननहार जाननेमें आ रहा है’ यह अभिप्राय हो वह ही यथार्थ श्रद्धा है।

१५

'मैं परको जानता हूँ' ऐसा जानते जानते अनंतकाल व्यतीत हो गया उससे तुझे आत्मदर्शन हुआ नहीं। अब एक अंतर्मुहूर्त 'मैं परको जानता नहीं हूँ, जाननहार ही जाननेमें आ रहा है' ऐसा अभिप्राय करे तो अंतर्मुहूर्तमें अनुभव हो जायेगा। अधिक समय नहीं लगेगा।

१६

'जाननहार ही जाननेमें आ रहा है'—यह अभिप्रायमें, लक्ष और पक्षमें अतीन्द्रियज्ञानका जन्म होता है। इन्द्रिज्ञान रुक जाता है।

१७

शास्त्र लिखते समय, कलम चले तब भी 'जाननहार ही जाननेमें आ रहा है'। उपादान जाननेमें आ रहा है। निमित्त मात्र झलकता है लेकिन जाननेमें आता नहीं क्योंकि ज्ञानीका लक्ष्य निमित्त पर नहीं है।

१८

'होने योग्य होता है' ऐसा अभिप्राय वह आत्माकी समझ बिनाका अभिप्राय है। वह तो आत्माके प्रति क्रोध है। लेकिन 'होने योग्य होता है और जाननहार ही मुझे जाननेमें आ रहा है' यह अभिप्राय ज्ञाता रहनेका एक मात्र मार्ग है, वह ही धर्म है, वह ही मोक्षमार्ग है।

१९

शंका : वर्तमान ज्ञानकी पर्यायमें यदि सभीको आत्मा जाननेमें आता हो तो कोई अज्ञानी रहता ही नहीं। इसलिये जाननहार जाननेमें आता नहीं है।

समाधान : सभी अज्ञानी प्राणीओंको वर्तमान वर्तते उपयोगमें 'जाननहार ही जाननेमें आ रहा है' क्योंकि ज्ञान और ज्ञायकको तन्मय सम्बन्ध है। ज्ञायक जीव द्रव्य है और ज्ञान वह गुण है। ज्ञाता पर्याय है, उसमें अनादि अनंत उपयोगमें ज्ञायक ही जाननेमें आ रहा है। लेकिन अज्ञानी ऐसा मानता है कि मुझे देह, राग, द्वेष ही जाननेमें आ रहा है। अज्ञानी यदि इन्द्रियज्ञानका व्यापार बंद करे तो 'जाननहार जाननेमें आ जाता है' और प्रत्यक्ष अनुभव हो जाता है। श्री समयसार गाथा १७-१८में कहा है कि ज्ञानीको पर जाननेमें नहीं आता, लेकिन परको जानते समय 'जाननहार ही जाननेमें आ रहा है'।

२०

कर्तापना छोड़कर 'जाननहार ही जाननेमें आ रहा है' ऐसा प्रयोग कर। चौबीस घंटे ऐसा प्रयोग कर। खाना खाते समय ऐसा विचार कर कि मैं खाता नहीं हूँ। लेकिन ''जाननहार ही मुझे जाननेमें आ रहा है।''

२१

'मैं परको जानता नहीं' ऐसा भाव आया उतनी देरमें स्व जाननेमें आ जाता है।

२२

जो ज्ञान ज्ञायकको जानता है, जो ज्ञान जाननहारको जानता है उसे ही ज्ञान कहते है। जो ज्ञान परको जाने उससे ज्ञायक जाननेमें नहीं आता। जो ज्ञान परिणामको जाने उससे भी ज्ञायक जाननेमें नहीं आता। अरे! 'मैं रागको जानता हूँ' ऐसे अज्ञानसे भी आत्मा जाननेमें नहीं आता। 'मुझे शरीर जाननेमें आता है' ऐसे अज्ञान द्वारा भी आत्मा जाननेमें नहीं आता। 'भगवानकी प्रतिमा मेरे जाननेमें आती है' अथवा 'साक्षात् तीर्थंकर मुझे जाननेमें आते है' अथवा 'नौ तत्त्वको मैं जानता हूँ' ऐसे क्षयोपशमज्ञानकी पर्यायसे भी जाननहार जाननेमें नहीं आता। लेकिन जो ज्ञान आत्माकी सन्मुख होकर मात्र आत्माको ही ज्ञेय करता है। 'मैं जाननहार हूँ और मात्र जाननहार ही जाननेमें आता है' इस ज्ञानसे ही आत्मा जाननेमें आता है।

२३

'जाननहार ही जाननेमें आ रहा है' यह बात यथार्थ लगे बिना भूत, वर्तमान, भविष्यमें अनुभव हो सकता नहीं।

२४

पूजामें बैठे-बैठे भी 'जाननहार ही जाननेमें आ रहा है' ऐसा प्रथम परोक्ष ज्ञान होनेके बाद भी अभेदपने जाननेमें आये तो पूजामें बैठे-बैठे भवके अंतका बीज बो दिया।

२५

‘जाननहार ही जाननेमें आ रहा है’ ऐसा अंतरमेंसे हाँ तो बोल। ‘हाँ’ बोलेगा तो हालत होगी अर्थात् पर्याय जाननेवाली ही परिणमित होगी और ‘ना’ कहेगा तो मिथ्यात्वके दोषसे निगोद मिलेगा। बोल, तुझे क्या चाहिये?

२६

‘जाननहार ही जाननेमें आ रहा है’ इस अभिप्रायमें राग कम हो जाता है। कर्मकी स्थिति और अनुभाग दोनों कम होते है। ‘मैं परको जानता हूँ’ इस अभिप्रायमें कर्मकी स्थिति और अनुभाग दोनोंकी वृद्धि होती है।

२७

परको जाने उसे कर्मचेतना कहते है। जाननहारको जाने उसे धर्म और ज्ञानचेतना कहते है।

२८

हे भव्य! आप सभीको ‘जाननहार ही जाननेमें आ रहा है’ ऐसा सुनकर कोई अंतर्मुख न हो ऐसा बनता ही नहीं।

२९

‘मैं परको जानता हूँ’ यह अभिप्राय वह महापाप है। हिंसा, जूठ, चोरीका पाप कदापि क्षमा योग्य हो लेकिन यह पाप क्षमाके लायक नहीं। ‘जाननहार जाननेमें आ रहा है’ यह अभिप्राय ही धर्म है।

३०

अमृत जैसी बात है कि 'परको जानता ही नहीं, 'जाननहार ही जाननेमें आ रहा है'। ऐसा अभिप्राय हो तो निश्चय स्वपरप्रकाशक ज्ञान प्रगट हो जाता है। लेकिन कब? प्रथम व्यवहार स्वपरप्रकाशक ज्ञानका निषेध तीव्र करे तब।

३१

जितना जाननेमें आ रहा है वह सभी उपादेय नहीं। लक्ष बिना जो भी देखा जाय वह सभी व्यर्थ है। लक्ष्यपूर्वक (तन्मयतापूर्वक) तो एक जाननहार ही जाननेमें आ रहा है।

३२

'जाननहार ही जाननेमें आ रहा है' यह समकितीका अथवा सम्यक् सन्मुख जीवका वचन है। 'पर जाननेमें आ रहा है' यह मिथ्यादृष्टिका वचन है।

३३

'जाननहार ही जाननेमें आ रहा है' यह स्वभावकी बात है। इस बातकी जो किमत करे वह निकट मोक्षगामी ही होता है यह सत्य बात है।

३४

जीवके परिणाम उसे कहे कि जिसमें 'जाननहार जाननेमें आ जाय' अन्य कुछ भी जाननेमें न आये।

३५

प्रश्न : वास्तवमें आत्माकी प्राप्ति हेतु क्या करें?

उत्तर : जो परके साथ ज्ञेय-ज्ञायकपनेका व्यवहार था, उसे जानकर उसका तीव्र निषेध कर। 'मैं ज्ञायक और शेष सभी ज्ञेय' यह बात नहीं है। 'मैं ही ज्ञायक और मैं ही ज्ञेय' ऐसा निश्चय ज्ञेय-ज्ञायकका अभेद अनुभव वह ही आत्माका स्वरूप है। 'मैं जाननहार और मैं ही ज्ञेय, मैं स्वयंको ही जान रहा हूँ' यह ही अनुभव है।

३६

'परको जानता हूँ' ऐसे अज्ञान पर ज्ञानने एटमबोम्ब फैंका। 'जाननहार ही जाननेमें आ रहा है' इस अनुभवसे।

३७

आपसे कुछ भी न हो रहा हो तो इतना तो मानना कि 'मैं परको जानता ही नहीं' तो अव्यक्तरूपसे जाननहार जाननेमें आ जायेगा।

३८

विधि निषेधका विकल्प नयमें होता है। स्वभावमें नहीं होता। स्वभावसे ही ज्ञान स्वको जानता है। बाह्यमें जाता ही नहीं। तो परको किस प्रकार तन्मय होकर जाने? इसलिये मुझे मेरा परमात्मा ही जाननेमें आ रहा है।

३९

प्रथम आत्माको जानना। पश्चात क्या करना? पश्चात भी हमेशा (जाननहार) आत्माको ही जानना।

४०

स्व और परप्रकाशक शक्ति आत्मामें है। उसका कार्य स्व और परको तन्मय होकर जाननेका है ऐसा नहीं। लेकिन स्व और पर ज्ञानकी पर्यायमें प्रतिभासित होता है और उस समय भी 'जाननहार ही जाननेमें आ रहा है' ऐसा अभिप्राय रखोगे तो कर्ताबुद्धि छूट जायेगी। मात्र ज्ञाताद्रष्टा रह जाओगे।

४१

प्रश्न : भगवानकी प्रतिमाको ज्ञान जानता है कि इन्द्रियाँ जानती है?

उत्तर : अज्ञानी कहता है कि मैं चक्षु द्वारा भगवानकी प्रतिमाको जानता हूँ अथवा भावेन्द्रियसे चक्षुके निमित्तसे भगवानकी प्रतिमाको जानता हूँ, लेकिन ज्ञानी कहता है कि प्रतिसमय आबालगोपाल सभीको सदा अनुभूति स्वरूप एक, शुद्ध, ज्ञायक आत्मा ही जाननेमें आ रहा है। लेकिन अज्ञानीको उस ओर लक्ष्य ही नहीं। परकी ओरका लक्ष्य है। इसलिये पर जाननेमें आता है। स्व जाननेमें नहीं आता। लेकिन स्वको ही मात्र ज्ञेय बनाकर उसमें ही एकाग्रता कर तो स्व ही जाननेमें आयेगा। आत्मानुभव हो जायेगा।

४२

(१) मात्र पर जाननेमें आता है ऐसा अभिप्राय वह मिथ्या एकांत है।

(२) स्व और पर दोनों जाननेमें आता है ऐसा अभिप्राय वह मिथ्या अनेकान्त है।

(३) 'जाननहार ही जाननेमें आ रहा है' ऐसा अभिप्राय वह सम्यक् एकांत है।

(४) 'जाननहार ही जाननेमें आ रहा है', पर नहीं। ऐसा अभिप्राय वह सम्यक् अनेकांत है।

सम्यक् एकांत ही यथार्थ अभिप्राय है।

४३

प्रश्न : निम्बु दालमें डाला हो तो दाल खट्टी है या निम्बु खट्टा है? उसी प्रकार ज्ञानमें राग जाननेमें आता है तो जीव रागी हो जाता है कि ज्ञायक रहता है?

उत्तर : यदि दाल खट्टी है ऐसा कहोगे तो निम्बुका द्रव्य रूप या पर्यायरूप कोई अस्तित्व ही न रहा। उसी प्रकार ज्ञानमें राग ही जाननेमें आता है ऐसा लक्ष्य करते 'मैं रागी हो गया' ऐसी मान्यता होगी तो वह ज्ञान भी दृष्टिमेंसे नीकल जायेगा और ज्ञानोपयोग भी निकल जायेगा। इसलिये मुझे 'मात्र जाननहार ही जाननेमें आ रहा है' ऐसा एकबार थोड़ी देरके लिये प्रयोग तो कर। हाँ तो कहे। तो तू स्वयं ही ज्ञान, ज्ञाता, ज्ञेयको अभेदपने अनुभव कर सकेगा।

४४

पर्यायदृष्टिसे सोचेंगे तो ऐसा जाननेमें आता है कि मेरे ज्ञानगुणकी पर्यायमे मात्र पूर्ण जाननहार गुण और उसे धरनेवाला द्रव्य ही जाननेमें आता है, पर जाननेमें आता ही नहीं। क्षणिक ज्ञानका उपयोग त्रिकाली उपयोगको अभेदपने जानता है। राग उपयोगमें है ही नहीं। तो जानेगा किस प्रकारसे?

४५

'जाननहार जाननेमें आ रहा है' इतना जानो! बस! 'होने योग्य सभी होता है'। प्रत्येक द्रव्यकी प्रत्येक पर्याय समय समयमें क्रमबद्ध ही परिणमित होती है। उसमें तू कुछ भी बदलाव नहीं कर सकता। किन्तु जो कर्ताबुद्धिका मिथ्यात्व था वह मात्र ज्ञाताद्रष्टारूप रहते छूट जाता है और जाननेयोग्य ज्ञायक जाननेमें आ जाता है। यह ही है सम्यक्ज्ञान।

४६

इन्द्रियज्ञान (अर्थात् कि पांच इन्द्रियोंके निमित्तसे होनेवाला ज्ञान) वह यथार्थ ज्ञान नहीं है। भावेन्द्रिय ज्ञान अर्थात् कि खंडखंड क्षयोपशम ज्ञान भी ज्ञानका यथार्थ लक्षण नहीं है। परज्ञेयको जाननहार ज्ञान वह यथार्थ ज्ञान नहीं लेकिन स्वको अर्थात् जाननहारको जाननहार ज्ञान ही यथार्थ ज्ञान है।

४७

'उपयोग उपयोगमें है' उसका अर्थ यह है कि 'जाननहार जाननेमें आ रहा है'।

४८

“जाननहार ही जाननेमें आ रहा है” वह ज्ञान है और ‘पर जाननेमें नहीं आता’ यह वैराग्य है।

४९

अनादि अनंत उपयोग लक्षण है। उपयोग लक्षण आत्माका है। इसलिये उसमें आत्मा ही जाननेमें आता है न? केवलज्ञान हो तब भी जाननेमें आये और प्रत्यक्ष अनुभव हो तब भी जाननेमें आये! जाननेमें आये! जाननेमें आये और ‘जाननहार ही मुझे मेरे ज्ञानमें जाननेमें आता है, अन्य कोई नहीं’ ऐसा अनुभव होते ही अतीन्द्रिय ज्ञान प्रकट होकर आनंद आता है।

५०

‘परको जानता हूँ’ ऐसी मान्यता जारी रखनेसे स्वयंके अस्तित्वका नाश हो जाता है। ‘जाननहार जाननेमें आ जाता है’ ऐसा माननेसे स्वयंके अस्तित्वका निर्णय हो जाता है।

जिस जीवको मोक्ष निकट है उस जीवको स्वयं अंतरमेंसे जाननहार ही ज्ञेयरूप भासित होता है।

५१

व्यवहारसे पर ज्ञेय है। लेकिन व्यवहार अर्थात् अभूतार्थ अर्थात् सत्य नहीं। उपचारसे कथन हो। ज्ञान परको निश्चयसे जानता नहीं है।

५२

“‘जाननहार’’में गति, लेश्या, क्षेत्र कोई भी भाव नहीं होता। जाननहार मात्र स्वको जान सकता है। कोई भाव कर सकता नहीं है। अरे! क्षयोपशमभाव या क्षायिकभाव भी नहीं। तो औदायिकभावकी तो बात ही कहाँ रही?

५३

अरे! पर्यायके भेद उपर लक्ष करनेका भी आत्माका स्वभाव नहीं। मात्र स्वद्रव्यको अभेदपने जानना वह ही ज्ञानका स्वभाव है। इसलिये मात्र ‘जाननहार जाननेमें आ रहा है’।

५४

जाननेवाली पर्यायसे भी रहित त्रिकाली शुद्ध द्रव्य है ऐसा श्रद्धान कर। अपरिणामीका ध्येय और श्रद्धान कर तो परिणामीका ज्ञान पर्यायमें आ जायेगा। यदि ध्येय दृष्टिमें आयेगा तो अनुभूतिकी पर्याय और आनंदकी पर्यायको भी ज्ञान जानेगा। करेगा नहीं।

५५

ज्ञानके प्रत्येक भागमें सर्वत्र ज्ञान ही व्याप्त है। ज्ञान आत्मा चिद्घन स्वरूप है। इसलिये ज्ञानमें अन्यका प्रवेश नहीं। इसलिये अन्य पदार्थोंको ज्ञान जानेगा कैसे? ज्ञानमें क्रोध व्याप्त नहीं तो क्रोध किस प्रकार जाननेमें आयेगा? ज्ञानमें तो जाननहार ही व्यापक है इसलिये ‘जाननहार ही जाननेमें आ रहा है’

५६

प्रश्न : ‘‘जाननहार ही जाननेमें आ रहा है’’ तो पुरुषार्थ किसका करना?

उत्तर : जैसा आत्मा जाननहार है वैसा श्रद्धामें स्वीकार करो, ज्ञानसे जानो और लीन हो जाओ। बस! इतना ही करो।

५७

प्रश्न : जाननहार जाननेमें आये ऐसा कोई उपाय बतलाओ।

उत्तर : हे भव्य! तुझे निरंतर ‘जाननहार ही जाननेमें आ रहा है’। परको तू जानता ही नहीं, जानता नहीं था और जानेगा भी नहीं।

५८

‘ज्ञान’में जाननेकी शक्ति है और आत्मामें प्रमेयत्व अर्थात् कि ज्ञेय होनेकी शक्ति है। तो ज्ञान जाने नहीं या आत्मा जाननेमें न आये ऐसा कभी नहीं होगा।

५९

‘‘जाननहार परको जानता ही नहीं’’ जाननहार स्वको ही जानता है। ऐसा विश्वास बिना विषयोंकी अभिलाषा (परको जाननेकी) छूटती नहीं। विषयोंसे हर्ष, शोक, रति, अरति, आश्चर्य, जुगुप्सा, ग्लानि छूटते नहीं है। लेकिन स्वको जानते परकी रुचि छूट जाती है और यह ही सच्चा त्यागधर्म है। यह ही स्वानुभूतिका मार्ग है।

६०

“आत्माने चतुर्गतिमें परिभ्रमण किया है” यह संसार कथा है। “आत्मा आत्माको जानता है” यह आत्मकथा है।

६१

‘जाननहार ही जाननेमें आ रहा है’ यह जैनका उत्तर है। “पर जाननेमें आ रहा है” यह भ्रमणाका भूत है।

६२

स्वभाव सन्मुख होकर स्वभावका अनुभव करना वह ही पुरुषार्थ है। जड़ चेतनके परिणाम तो स्वयं होते है। ‘होनेयोग्य होता है’ इसलिये परके ओरकी कर्ताबुद्धिको समेटकर ‘जाननहार ही जाननेमें आ रहा है’ यह तेरी श्रद्धामें लेकर स्वीकार कर। यह ही पुरुषार्थ है।

६३

‘जाननहार ही जाननेमें आ रहा है’ यह एक ही बात आजतक लक्ष्य, ध्येयपूर्वक सुनकर आत्मसात् की नहीं। बस! अब इसी बातको सुनकर उसे आत्मसात् कर।

६४

‘मैं जाननहार हूँ’ और ‘मैं ही जाननेमें आ रहा हूँ’ इस विकल्प तूटे तभी अनुभव होता है।

६५

प्रश्न : राग और ज्ञान एक साथमें ही होता है, तो उसका आभास भी साथमें होता है। तो रागका लक्ष्य किस प्रकार छूटेगा ?

उत्तर : छोड़ेगा तभी तो छूटेगा। ज्ञायकका लक्ष्य करे तो रागका लक्ष्य छूटता है। जैसे वृक्षको पकड़कर स्वयं छोडता नहीं और किस प्रकार छूटे? ऐसा अन्यको पूछता है। वैसे रागको तूने स्वयं पकड़ा है और छोड़ता नहीं और पूछता है कि राग कैसे छूटे? 'राग मेरेमें होता है' यह ध्येयकी भूल है और 'रागको जानता हूँ' यह ज्ञेयकी भूल है। इसलिये 'मेरेमें राग ही नहीं और मैं रागको जानता ही नहीं' ऐसा स्वीकार करेगा तभी ज्ञान ही जाननेमें आयेगा। क्या परमात्मामें राग होता है?

६६

ज्ञेयके प्रतिभासके समय भी 'जाननहार ही जाननेमें आ रहा है' बस! ज्ञेय जाननेमें आता ही नहीं। जब ज्ञान अंतरमें झुकता है तभी जगतके सर्व पदार्थ, अरे! निर्मल पर्याय भी अवस्तु है।

६७

'जाननहार ही जाननेमें आ रहा है'। यह उपयोगका सद्‌उपयोग हुआ और 'पर जाननेमें आ रहा है'। यह उपयोगका दुरुपयोग हुआ।

६८

‘जाननहार जाननेमें आ रहा है’ इस दृष्टिमें लक्ष्य पलट जाता है। परकी ओर अनादिसे लक्ष्य था वह स्वकी ओर झुक जाता है। लक्ष्य पलटना नहीं पड़ता। पलट जाता है।

६९

‘परको जानना सर्वथा छोड दे’, ‘जाननहार ही जाननेमें आ रहा है’ ऐसा अनुभवमें ले तो तुझे कल नहीं, आज, अभी सम्यग्दर्शन होगा।

७०

प्रमाण अर्थात् द्रव्य, गुण, पर्यायका ज्ञान। प्रमाण ज्ञानमें पर्यायके भेद, गुणके भेदका ज्ञान आ जाता है। उसमें विकल्प आते है इसलिये उसमें रुक जाने जैसा नहीं। मात्र ‘जाननहार ही जाननेमें आ रहा है’ ऐसे अनत गुणोंके एकरूप स्वरूपको जान। बस! निर्विकल्पदशामें ‘जाननहार ही जाननेमें आ रहा है’ तभी अनुभवमें पर्यायमें जितना ज्ञान, आनंद, वीर्य आये उसका ज्ञान, उसका ही वेदन होता है, परद्रव्यका नहीं।

७१

‘‘जाननहार ही जाननेमें आ रहा है और जाननेलायक भी जाननहार ही है’’ यह ही भावना आत्मार्थी सदा भाते है।

७२

‘मैं परका कर्ता भी नहीं और ज्ञाता भी नहीं’ इस प्रकार बार-बार विचारमें लेना वह व्यवहार पात्रता है।

७३

परका प्रतिभास ज्ञानमें होता है तब एक ही अभिप्राय कि 'परके साथ मेरा कोई भी सम्बन्ध नहीं है, मैं तो मात्र जाननहारको ही जानता हूँ' जाननहार ज्ञायक 'ज्ञायक स्व'के साथ ही मुझे स्वामीत्व सम्बन्ध है। ऐसा परकी जड़मूलसे उपेक्षा करते ज्ञानमें मात्र एक अभिन्न ज्ञायकका ही प्रतिभास होता है। वह ही है स्वानुभव।

७४

प्रश्न : हम आत्मज्ञानका प्रारम्भ कहाँसे करें?

उत्तर : (१) प्रथम तो आत्माको जानो। उसका स्वरूप ज्ञानमय ही है। 'जाननहार ही जाननेमें आ रहा है' उसे जाने—सम्यक्ज्ञान।

(२) 'मैं ज्ञाता और छह द्रव्य मेरे ज्ञेय' ऐसे मिथ्यात्व पर तरवार चलाना।

'मैं ज्ञाता, मैं ज्ञेय, मैं ज्ञान' इस प्रकार श्रद्धा करो—सम्यग्दर्शन।

(३) 'जाननहार जाननेमें आ रहा है' उसे ही ध्येय बनाकर, लक्ष्य बनाकर उसमें ही एकाग्रता करो—सम्यक्चारित्र।

७५

ज्ञान स्वके लक्षसे ही होता है। अज्ञान परके लक्षसे ही होता है।

७६

यदि ज्ञायक तक पहुँच जायेगा तो परज्ञेयोंकी प्रसिद्धि छूट जायेगी।

७७

उपदेश—उप अर्थात् समीप। देश अर्थात् चैतन्य स्वदेश। जो ज्ञायक स्वदेश तक ले जाय वह है उपदेश।

७८

—जाननहारको मात्र ''जाननहार''रूप जानना उसमें ही अपूर्व पुरुषार्थ है।

७९

समकित सन्मुख जीव स्वयंमें दोष होते हैं उसे जानते है। लेकिन दोष ढूंढने ठहर नहीं जाते। वह तो 'जाननहारको जाननेका' पुरुषार्थ उग्र कर देतै है तो दोष स्वयं ही चले जाते है।

८०

ज्ञान कहे तदपि जाननहार।

ज्ञेय कहे तदपि जाननहार।

ज्ञाता कहे तदपि जाननहार।

नाम तीन होने पर भी वस्तु तो एक ही है।

८१

– आत्मा परको जाने – मिथ्यात्व।

– आत्मा आत्माको जानता है – भेद-व्यवहार।

– 'आत्मा तो आत्मा ही है' ऐसा अनुभव–निश्चय।

८२

परको जानने जाय तो परसे जुड़नेका और राग-द्वेषका प्रश्न आता है इसलिये जड़में ही ऐसा वार करो कि 'मैं परको जानता ही नहीं, जाननहारको ही जानता हूँ'।

८३

मिथ्यात्व (विपरीत श्रद्धा) आत्माकी ही प्रसिद्धि करता है। कर्तृत्व ज्ञातृत्वको ही प्रसिद्धि कर देता है।

८४

'जाननहारको ही जानता हूँ' ऐसा 'ही' स्वीकार करेगा तो धर्मका जन्म होगा। 'ही' छोड़कर 'भी' स्वीकार करेगा तो गिर जायेगा।

८५

एक ज्ञायक (जाननहार)को जाननेसे सभी जाननेमें आ जायेगा। अभेदको जानते सभी भेदाभेदके अवलम्बन बिना जाननेमें आ जायेगा। लेकिन जाननेकी आकांक्षा होगी तो विकल्पकी जाल उपस्थित ही रहेगी।

८५

प्रश्न : ज्ञानी किसका भोक्ता है? सुखका या दुःखका?

उत्तर : किसीका नहीं, वह तो ज्ञाता ही है।

८७

रागको करे तो आत्माका नाश।

रागको जाने तो अनुभवका नाश।

आत्मा आत्माको जाने ऐसे भेदमें भी अनुभवका नाश।

आत्मा ही जाननेमें आता है। वह यथार्थ अनुभव।

८८

भेदज्ञानसे मिथ्यात्व मंद होता है। अभेदके अनुभवसे मिथ्यात्वका पूर्ण नाश होता है।

८९

'ज्ञान ज्ञेयको प्रकाशता है' यह अभिप्राय मिथ्याज्ञान। 'ज्ञान ज्ञानको प्रकाशता है' यह अभिप्राय सम्यक्ज्ञान।

९०

'मैं परको जानता ही नहीं' इस अभिप्रायमें पर्यायसे 'मेरा पना'(कर्तृत्वपना) छूट जाते ज्ञान सम्यक् हुआ। उस ज्ञानमें मात्र 'जाननहार ही जाननेमें आ रहा है'।

९१

बारह अंगको जानना वह मनका धर्म है।

शुद्धात्माको जानना वह ज्ञानका धर्म है।

९२

‘दु:खको जानता हूँ’ वह अज्ञान।

‘दु:खको स्वयंका मानना’ वह मिथ्यात्व।

‘दु:खको मैं भोगता हूँ’ ऐसा मानना वह मिथ्यात्व।

९३

‘परका कार्य करता हूँ’ इस मान्यतासे ज्ञानका संकोच होता है।

‘परको जानता हूँ’ इस मान्यतासे ज्ञान संकोच होता है।

‘जाननहार ही जाननेमें आ रहा है’ इस मान्यतासे ज्ञानका विकास होता है।

९४

जैसे आपके सामने कोई बालक जन्म लेकर तुरंत मर जाय ऐसा आपको पर्यायके सम्बन्धमें दिखाई देता है? तो आपकी दृष्टि यथार्थ पर्यायदृष्टि है।

९५

‘मैं ज्ञाता हूँ’ ऐसे अनुभवसे सभी तमाम प्रकारके विकल्पों चले जाते है। विराम मिलता है।

९६

‘मैं परमात्मा हूँ’ ऐसा पूज्य गुरुदेवश्री प्रतिदिन फरमाते है। ऐसा अनुभव कर। तो परमात्मा द्रव्यसे है और पर्यायमें परमात्मा हो जायेगा।

९७

पर्यायमें खड़ा मत रहो।

पर्याय उपर लक्ष्य मत दो।

स्वरूप (जाननहार) उपर ही लक्ष्य दो।

९८

प्रश्न : रुचि अर्थात् क्या?

उत्तर : अकर्ता जाननहारकी अड़ग श्रद्धा।

९९

आत्माको (जाननहारको) सर्वोत्कृष्ट उर्ध्व रखकर ही स्वाध्याय किजीये।

१००

समाज धक्का देगा,

कुटुम्ब धक्का देगा,

देह भी धक्का देगा,

लेकिन जाननहार कभी तुझे धक्का नहीं देगा।

१०१

जो जिसका हो वह वह ही होता है। आत्माका ज्ञान होनेसे ज्ञान वह आत्मा ही है।

१०२

अंतरमें डूबकी मारते श्रद्धामें ऐसा आये कि मैं भूत, वर्तमान, भाविमें दुःखी था नहीं, हूँ नहीं और होऊँगा भी नहीं। दुःखकी पर्याय कभी द्रव्यको दुःखमय नहीं कर सकती।

१४ गुणस्थान तकमें ज्ञानकी पर्यायमें वृद्धिगत होती शुद्धिका चार्ट

गुणस्थान	शुद्धि
१, २, ३......	पूर्ण अशुद्धपर्याय
४.......	अंशे शुद्ध, शुद्धिका प्रारंभ
५ से १०....	शुद्धिकी वृद्धि होती जाती है।
१२	क्षीणमोह-शुद्धिकी पराकाष्टाके नजदीक।
१३	मात्र चार अघातिकर्म बाकी।
	शुद्धिकी पराकाष्टा अरिहंत
१४	पूर्ण शुद्ध, मुक्त सिद्ध

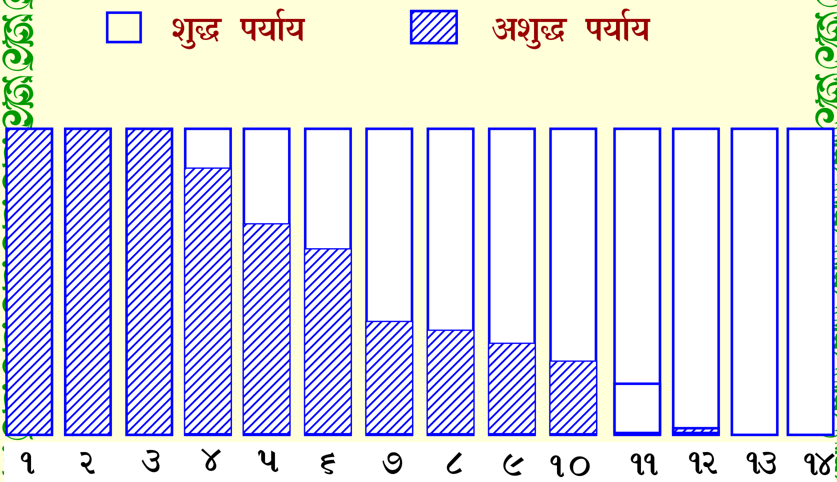

यह चार्ट मात्र शुद्धिकी मात्रा बतलाते है। पूर्ण प्रतिशत नहीं।

प्रश्न : व्यवहारनय अर्थात् क्या?

उत्तर : व्यवहारनय अर्थात् भेदका ज्ञान। व्यवहारनय दो प्रकारसे जाननेमें आते है। (१) आगम पद्धतिसे (२) अध्यात्मपद्धतिसे। वह निम्नानुसार है।

अध्यात्म पद्धतिसे

	उपचरित	अनुपचरित
असद्भूत	बुद्धिपूर्वकका राग	अबुद्धिपूर्वकका राग
सद्भूत	ज्ञान स्वपर प्रकाशक है (रागको जानते है)	ज्ञान वह आत्मा अथवा गुण-गुणीके भेद

आगम पद्धतिसे :

	उपचरित	अनुपचरित
असद्भूत	दूरवर्ती नोकर्म	नजदीकवर्ती नोकर्म, द्रव्यकर्म
सद्भूत	विकारी अथवा अपूर्ण निर्मल पर्याय	शुद्ध पर्याय

श्री समयसारजीकी ११वीं गाथामें व्यवहारनयको अभूतार्थ अर्थात् असत्यार्थ, हेय कहा है। वह मात्र जानकर त्यागनेको कहा है। यहाँ जो आगम पद्धति और अध्यात्म पद्धतिसे आठ भेद कहे उसके उपर लक्ष्य न देते अर्थात् कि प्रथम आगम पद्धतिसे चार नोकर्म, द्रव्यकर्म, भावकर्म और गुणगुणीके भेदको लक्ष्यमेंसे छोड़कर बुद्धिपूर्वक और

अबुद्धिपूर्वक रागको भी लक्ष्यमेंसे छोड़कर, ज्ञान स्व और परको प्रकाशित करता है यह भेद भी छोड़ते जो प्रमाणकी श्रद्धा थी उसका अस्त होते मात्र 'जाननहार' रहता है। इसलिये 'जाननहार ही जाननेमें आ रहा है' यह ही भावार्थ है। व्यवहारनय जाननेका।

पूज्य बहिनश्री चंपाबेन जन्मधाम (वढवाण)

हमारे प्रकाशन

गुजराती प्रकाशन

१. संवादमाला भाग-१
२. संवादमाला भाग-२
३. संवादमाला भाग-३
४. संवादमाला भाग-४
५. संवादमाला भाग-५
६. संवादमाला भाग-६
७. संवादमाला भाग-७
८. हितपद संग्रह
९. आनंद तरंग
१०. मोक्षमार्ग प्रकाशकना मणका
११. अध्यात्मना प्रयोगो
१२. भक्ति भावना
१३. मंगल सम्यक् गुरुवाणी भाग-१
१४. मंगल सम्यक् गुरुवाणी भाग-२
१५. मंगल सम्यक् गुरुवाणी भाग-३
१६. मंगल सम्यक् गुरुवाणी भाग-४ (PDF)
१७. मंगल सम्यक् गुरुवाणी भाग-५ (PDF)
१८. अनुभवरत्न चिंतामणि भाग-१ (PDF)
१९. अनुभवरत्न चिंतामणि भाग-२ (PDF)
२०. अनुभवरत्न चिंतामणि भाग-३ (PDF)
२१. अनुभवरत्न चिंतामणि भाग-४ (PDF)
२२. ध्रुवनी ध्रुवता भाग-१ (PDF)
२३. ध्रुवनी ध्रुवता भाग-२ (PDF)
२४. ध्रुवनी ध्रुवता भाग-३ (PDF)

हिन्दी प्रकाशन PDF

१. संवादमाला भाग-१ (PDF)
२. संवादमाला भाग-२ (PDF)
३. संवादमाला भाग-३ (PDF)
४. संवादमाला भाग-४ (PDF)
५. संवादमाला भाग-५ (PDF)
६. संवादमाला भाग-६ (PDF)
७. संवादमाला भाग-७ (PDF)
८. हितपद संग्रह (PDF)
९. आध्यात्मिक प्रयोग एवं विधि (PDF)

मंगल सम्यक् गुरुवाणी भाग १ से ५ (गुजराती) (PDF) और Audio vitragvani.com पर उपलब्ध है।

इस पुस्तककी PDF wordpress.com / Gurubhakt.Home.Blog पर है।
Video At YOUTUBE : Smita Bavishi channel
Telegram पर Gurubhakt Channel में PDF or Video Link है।

नोंध : गुजराती प्रकाशनकी कोई भी पुस्तक अभी उपलब्ध नहीं हैं। नेट पर सभी साहित्य उपलब्ध है । वहाँसे विनामूल्य डोउनलोड कर सकते हैं।